



ISSN Print: 2394-7500  
 ISSN Online: 2394-5869  
 Impact Factor: 5.2  
 IJAR 2017; 3(8): 908-910  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
 Received: 09-06-2017  
 Accepted: 13-07-2017

## अभिमन्यु सिंह

(शोधार्थी) हिंदी एवं भाषा विज्ञान  
 विभाग, रानी दुर्गावती  
 विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य  
 प्रदेश, भारत

## भारत विभाजन के पश्चात् साम्प्रदायिक तनाव

### अभिमन्यु सिंह

भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन एक ऐतिहासिक घटना है। यह घटना कम और हादसा ज्यादा है। वह बुजुर्ग पीढ़ी धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है जिसने विभाजन को देखा और झेला है। सत्तर साल बाद आज फिर देश के बंटवारे पर बात क्यों और वह भी हिन्दी साहित्य की दुनिया में, क्या इसलिए कि हम अपनी किसी अमूल्य विरासत की जड़ों को तलाशने की कोशिश में है। बंटवारा करने की अपने पूर्वजों की गलतियों के दुष्परिणामों को भोग रहे हैं और उन्हें सुधार कर फिर एक होना चाहते हैं।

1947 से लेकर अब तक बंटवारे पर लिखे साहित्य में कई मामले आते हैं। सर्वेक्षण किया जाय तो सबसे पहले, लिखने वालों की उस नस्ल से सामना होता है जिसने बंटवारे को जिया और भुगता। इस नस्ल की जिन्दगी बंटवारे से नजरअंदाज हुई और वे लोग उन्नीस सौ सैतालिस की आग के साक्षी बने। बंटवारे का कर्मध्वेदना, उससे जुड़ा गुस्सा झुंझलाहट, बौखलाहट और बेचैनी इनके लेखन में मिलती है, और इसके साथ एक ऐसा झकझोरने वाला विवरण सामने आता है जो कई बार यथार्थवाद के दायरों को भी ध्वस्त करता है। दूसरा मामला तय करने वाले तो लोग हैं जो 1947 में अभी जवान नहीं हुए थे लेकिन उन्होंने बंटवारे को देखा था, उसके जख्मों को झेला था और वे उनके अवचेतन का हिस्सा बने। बंटवारा इन दोनों नस्लों की दास्तान है।

इनके बाद की नस्ल वो नस्ल देखते जिसने बंटवारे को न तो जिया और ना देखा लेकिन इस नस्ल ने भारत के बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में बंटवारे को परस्पर महसूस किया। हर साम्प्रदायिकता में, हर आतंकी हमले में, कश्मीर से जुड़ी बहसों में बंटवारे और हकीकत से इन लोगों का सामना होता रहा है। इन साहित्यकारों की कहानियों में जरूरी नहीं कि बंटवारे का सीधा बयान हो, लेकिन उनका साया इन कहानियों पर मंडराता नजर आता है। ये कहानियां इस बात की दलील है कि जो घट चुका वो बीता नहीं और हमारी सामूहिक स्मृति में बसा हुआ है।

बंटवारा धर्म के नाम पर हुआ था। जितनी मारकाट हुई वो धार्मिक शिनाख्तों के आधार पर हुई धर्म ही वो पहचान थी जिसके आधार पर लोग अपने घर छोड़कर न कि मकानों की तलाश में निकल पड़े (कुछ अपनी मर्जी से और कुछ मजबूरी में) फिर भी बंटवारे पर लिखने वाली पहली दो नस्लों ने धर्म को अपनी कहानियों का मुख्य विषय नहीं बनाया। वे नस्ले अभी बंटवारे के आघात से ही उबरने की कोशिश कर रही थी, उनके सरोकार और थे और उनके सवाल अलग। धर्म और उसका विश्लेषण उन सवालों का हिस्सा नहीं था।

आज के परिप्रेक्ष्य में जब हम बंटवारे की बात करते हैं और अपने मौजूदा दौर में उसको समझने की कोशिश करते हैं, तो हम धर्म और उससे जुड़े सवालों से नजरें चुराकर आगे नहीं बढ़ सकते। इसकी वजह यह है कि धर्म निरपेक्षता के आदर्श के बावजूद, बदलते भारत में बहुसंख्यवादी प्रजातंत्र को बढ़ावा मिला और अल्पसंख्यकों ने खुद को हमेशा हाशिए पर पाया और बहुत प्रखरता के साथ व्यक्तिगत पहचाने अब धर्म-जाति से चिन्हित होने लगी। ये विडम्बना ही थी कि इक्कीसवीं शताब्दी में कदम रखते-रखते भारत की सामाजिक वास्तविकता में निहित दरारे अब साफ-साफ नजर आ रही थी और धर्म और उससे जुड़े सवाल हमारी सामाजिक और राजनैतिक हकीकत को नए सिरे से प्रभावित कर रहे हैं।

देश के बंटवारे से साहित्य पर भी स्पष्ट छाप दिखायी देती है। उस समय के लेखकों ने यह दुख और दर्द भरी रुदन देखी, सुनी और भोगी थी। इसके दुख, इसकी यातनाओं के निशान उनके जेहन और जिस्मों पर तब ही बन गये थे, और सारी उम्र बने रहे। उनकी यादों के साथ गुथे बुने रहे। परिवारों का बिखरना, जमीनों का टूटना, बेघर, बेजड़ होना, इन सबने महसूस किया और देखा था जो मुसलमान पाकिस्तान चले गये उन्होंने भी और जो यहाँ रहे, उन्होंने भी। उस समय यह सब देख, भोग कर लिखने वालों के उपन्यासों की फेहरिस्त बनायी जा सकती है कृ आधा गांव (राही मासूम रजा), झूठा सच (यशपाल), तमस (भीष्म साहनी), गुजरा हुआ जमाना (कृष्ण बलदेव वैद) काले

## Correspondence

### अभिमन्यु सिंह

(शोधार्थी) हिंदी एवं भाषा विज्ञान  
 विभाग, रानी दुर्गावती  
 विश्वविद्यालय, जबलपुर, मध्य  
 प्रदेश, भारत

कोस (बलवंत सिंह)। उनकी भी, जो ठीक बाद की पीढ़ियों में हुए और उन्होंने भी लिखा। सात आसमान (असगर वजाहत), काला जल (शानी) यहाँ ध्यान देने की एक बात है। पहली नजर या पाठ में यह बात बहुत ही कड़वी या शायद गंदी लगे, पर यह सच कि हदों को छूती है, इसलिए उसे कहना और यह बात बहुत सी कड़वी या शायद गंदी लगे, पर यह सच कि हदों की छूती है, इसलिए इसे कहना और इस बार बात करना बहुत गलत नहीं होगा।

वे हिन्दी लेखक जो गैर मुसलमान थे, ये दोनों देशों के सरहदी इलाकों के थे, उसमें भी खासतौर से पंजाब के। इन्होंने बंटवारे की तकलीफों और दुखों को मुसलमानों के बराबर ही उतनी शिद्दत और नजदीक से देखा था कि भोगा। इस सबका बचपन, इनकी जवानी, मुसलमानों के जीवन के साथ जुड़ी थी। उनके साथ उठना बैठना साझा था। इनके उपन्यासों में वहीं बरबादी, बेचारगी और तकलीफें हैं जो मुसलमान लेखकों के उपन्यास में हैं। यह जीवन उनकी यादों में हमेशा रहा, इसलिए उन्हें अपने पड़ोसियों से, अपने उजड़ने से बहुत शिकायतें नहीं हैं न भीष्म साहनी को, न कृष्ण बलदेव वैद को, न यशपाल को।

### भीष्म साहनी ने लिखा है :

“हिन्दू मुसलमानों के आपसी रिश्तों के पीछे काम करने वाले तत्व का भी इस तनाव के दिनों में एक खाका सा उभार रहा था। हम साये एक-दूसरे पर हाथ नहीं उठाते थे। मुसलमान पड़ोसी हिन्दू पर हाथ नहीं उठाता था बल्कि उसके बचाव के साथन दूढ़ता था, इसी तरह हिन्दुओं के मुहल्ले में रहने वाला मुसलमान भी ज्यादा महफूज था पर धार्मिक मान्यता के प्रभाव में वही हिन्दू या मुसलमान शहर के किसी दूसरे इलाके में निःसंकोच आवागमन कर सकता था। दोस्तों की दोस्ती अन्त तक बनी रही भले ही दोनों दोस्तों ने खून से हाथ रंगे हो। ऐसा ही व्यवहार गांवों में भी हुआ। गांव के अन्दर रहने वाले अल्पसंख्यक हिन्दुओं तथा सिखों पर हाथ नहीं उठाया गया। बल्कि उन्हें बचाने की कोशिश की गई। उन पर हाथ उठाया दूसरे गांव के लोगों ने, लेकिन उनकी स्मृतियों व अनुभव में यह साझा सामाजिक, राजनैतिक परिवेश था। फिर भी उनकी रचनाओं में, चेतना और संवेदना में यह पक्ष अनुपस्थित रहा क्यों? क्या सिर्फ इसलिए कि ये उस क्षेत्र के नहीं थे जहां बंटवारा हुआ तो क्या मान लिया जाय कि लेखक के लिए मानवीय विभीषिकाएं भी क्षेत्रीय सरोकार रखती हैं 1947 के बंटवारे का भी यही सच था। बंटवारे में इस हिन्दी पट्टी के पाकिस्तान में जाने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसमें रहने वालों की भाषा, मध्यवर्ग पूंजी, सामाजिक संरचना, पारिवारिक जिम्मेदारियों को कोई डर, कोई उत्तेजना भी नहीं थी बावजूद इसके कि पाकिस्तान का आन्दोलन इसी हिन्दी पट्टी में जन्मा था। यही फैला और बढ़ा था। हिन्दू-मुसलमान की दो अलग कौमो और दो अलग राष्ट्रीयताओं की बात 1857 के बाद ही उठना शुरू हो गयी थी। सर सैयद और अलीगढ़ इसके केन्द्र थे। यहां के धार्मिक मुस्लिम संगठन इसके पैरोकार थे। फिर इस पट्टी के हिन्दी लेखकों के सरोकारों में यह सब क्यों नहीं रहा? उनके लेखन, विचार, चरित्र, बहसों में क्यों नहीं रहा जिस तरह सरहदों के हिन्दी लेखक यशपाल, भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, बलवंत सिंह की रचनाओं में रहा? कृष्णा सोबती और बलवंत सिंह की रचनाओं में रहा। कृष्णा सोबती (गुजरात) के ज़िंदगीनामा में विभाजन के पहले का यही पंजाब है। यही पंजाब काल कोस में भी है। तो क्या हिन्दी पट्टी का हिन्दी लेखक, भाषा और साहित्य के स्तर पर यह मान चुका था कि मुसलमान, पाकिस्तान और देश का बंटवारा उसका या हिन्दी का मामला नहीं है कि ये मुसलमानों के सरोकार हैं उनके सोचने देखने, समझने की बात है? यदि ऐसा था तो वह गलत था।

मुसलमानों के एक बड़े वर्ग ने गांधी, नेहरू, मौलाना आजाद, कांग्रेस पर भरोसा रखा। उनके साथ राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ा।

इस मुल्क में अपनी जड़ें, अपनी हिस्सेदारी, अपनी विरासत, अपने इतिहास को नये सिरे से समझना शुरू किया। उसने समझा, यह हिन्दुस्तान उसका भी उतना है जितना दूसरों का था। उसने आर्यों की पहली आमद हिन्दोस्तान में हिमालय, गंगा, जमुना, संगम, रावी, चेनाव, सावन, भादो, फागुन, होली, दिवाली, इलाहाबाद, बनारस, कृष्ण राधा, शिव पार्वती, मेघदूत पर लिखा स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान देशभक्ति और आन्दोलनों पर लिखा।

आग का दरिया में कल्लेआम आजादी को पहले का हिन्दुस्तान बताया है। यह हिन्दुस्तान क्या था, इसकी सचेतन रूप में उसने (कमाल ने) व्याख्या नहीं की। बचपन से वह इस हिन्दुस्तान का आदी था, जहां वह पैदा हुआ था जहां उसके पुरखे पिछले सात-आठ सौ साल से पैदा होते आये थे। इस हिन्दुस्तान में बस्ती जिले का मठ था, जहां बरामदे में तख्त पर एक मोटा बी.ए. पास महन्त बैठा था जिसको मम्मी ने दस का नोट चढ़ाया था, और जिसने आशीर्वाद दिया था। हिन्दुस्तान इटावे की वह काई, चढ़ी दरगाह थी, जिनमें से एक कमाल को बटवल के सन्तरे खिलाए थे। ..... माता, अब साफ करो, मैया को छोड़कर चली आओ माता तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूँ (पृ. 273)

पर समय के साथ, अलग-अलग कारणों से मुस्लिम लीग और जिन्ना और मौलवी-मुल्ला, उलेमा, जमींदारों ने इस हिन्दुस्तान को उसके ख्यालों को लपक लिया और एक नकली धुन लगे मुसलमानों के अपने अलग इस्लामी, मुल्क पाकिस्तान के साथ वाबस्ता कर दिया। यह पाकिस्तान उसके किसी काम का नहीं था, फिर भी अधिकांश मुसलमान एक अंधी गली में उतरते चले गये, सिवाय उनके जो तब भी हिन्दोस्तान को अपना समझ रहे थे, और पूछ रहे थे, यह मुआ जिन्नदा कैसा शीआ है कि हिन्दुस्तान के खिलाफ..... और पूछ रहे थे।

‘हे बीबी, हुई पाकिस्तवना लेहर बनी छिकुरिया ने यह सवाल किया जो उसे बहुत दिनों से सता रहा था।

“अ का जाने लेहर बन रहा माटी मिला” “जउनी गाजीपुर में बन्नत त हमहूँ देख लेते।” छिकुरिया ने अपनी धोती के फेट के कच्ची तम्बाकू की पत्ती निकालते हुए कहा। “हम त समझत बाड़ी की ई पाकिस्तान कउनो महजिदकृ ओहजिद होई।” (आँधा गाँव, पृ. 255) वे थे।

उनको समझ में नहीं आ रहा था कि पाकिस्तान न बने त ई हाल है, अउर जो ई बन गया तो गंगौली में खून-खराबा हो जायेगा? (पृ. 283)

वे चाहते थे कि ‘ई कांग्रेस माटी मिली को कोढ़ हो जाए’। (पृ. 307) उनके सवालों के उत्तर किसी के पास नहीं थे न सर सैय्यद के पास, न रहमत अली, न जिन्ना, न गांधी, न नेहरू और न मस्जिदों के मौलवी, मुल्लावो के पास। उनके सारे हमदर्द मुस्लिम लोग हिन्दुस्तान से आगे। जिन्ना 7 अगस्त 1947को पाकिस्तान के लिए उड़े तो पलटकर कभी भारत में रह गये मुसलमानों के बारे में एक शब्द नहीं बोला। उनके लिए उनका पाकिस्तान वही था। भारत के मुसलमान पूछ रहे थे ‘मैं कौन हूँ’

### राही मासूम रजा पूछ रहे थे—

“जनसंघ का कहना है कि मुसलमान यहां के नहीं है। मेरी क्या मजाल कि मैं उसे झुठलाऊँ। मगर यह कहना ही पड़ता है कि मैं गाजीपुर का हूँ। गंगौली से मेरा सम्बन्ध अटूट है। वह एक गांव ही नहीं है वह मेरा घर भी है। घर! यह शब्द दुनिया की हर बोली और भाषा में यह उसका सबसे खूबसूरत शब्द भी है। इसलिए मैं इस बात को फिर दोहराता हूँ। मैं गंगौली का हूँ क्योंकि वह केवल एक गांव ही नहीं है क्योंकि वह मेरा घर भी है। ‘क्योंकि’ यह शब्द कितना मजबूत है और इसी तरह के हजारों हजार ‘क्योंकि’ और है और कोई तलवार इतनी तेज नहीं हो सकती है, कि इस ‘क्योंकि’ को काट दे। और जब तक यह क्योंकि जिन्दा है मैं सैय्यद मासूम रजा आब्दी गाजीपुर ही रहूंगा चाहे मेरे दादा कहीं ले रहे हो।” (आधा गाँव, पृ. 301-03)

राही पाकिस्तान नहीं गये। कुछ गये वे लौट आये। साहिर लौटे, सज्जाद जहीर लौटे, कुरअतुलाएन हैदर जोश मलीहाबादी भारत विभाजन से जो त्रासदी उत्पन्न हुई परिणाम 5 से 10 लाख के बीच औरत मर्द और बच्चे जिन्दगी से हाथ धो बैठे, 70 हजार से ज्यादा महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ और तकरीबन 1 करोड़ 20 लाख लोग अपने घरों को छोड़कर पलायन हुए।

हिंसा और विस्थापन एक मन्द दीर्घकालिक प्रक्रिया रही और बँटवारे के तुरन्त बाद की इन घटनाओं से परे, मुस्लिम अल्पसंख्यक इलाकों में हिंसा प्रवासन और बिस्थापन का इतिहास ऐसी दास्तान है। बँटवारे के आघात ने नवजात राष्ट्रों की जिन्दगी वह स्तर पर और उतने ही यातनावादी रूप में सूक्ष्म स्तर पर भी, अपना असर डाला। बँटवारे की विराट किन्तु भावनाहीन सांख्यिकी व्यक्तियों, परिवारों, मुहल्लों और शहरों पर टूट पड़ने वाली इस त्रासदी, के एक हिस्से को भी हमारे सामने पेश करने में नाकाम रहती है। हिन्दू और मुसलमान स्तब्ध भाव से अपनी दुनिया को टुकड़ों में बिखरता देखते रहे, भले ही वे खुद इस कारवाई में शामिल थे। विभाजन सिर्फ अंग्रेजों और राजनीतिज्ञों का कारनामा नहीं था। आम हिन्दुस्तानी भी चाहे, अनचाहे, उसका बराबर का भागीदार था। कहना यह नहीं था कि आम हिन्दुस्तानी भी चाहे, अनचाहे, उसका बराबर का भागीदार था। कहना यह नहीं कि तमाम लोग विभाजन चाहते थे, बल्कि यह है कि आप चाहे इसके पक्ष में रहे हो या खिलाफ, चाहे आप इसके द्वारा मुहैया कराये जा रहे अवसरों में के प्रति उत्सुक रहे हो या उसके साथ जुड़ी तबाही को सन्देह की निगाह से देखते रहे हो, हर कोई विभाजन के विमर्श और विभाजन के अमल, दोनों में भागीदार था। अगर अंग्रेज अपनी जिम्मेदारी से बरी नहीं किये जा सकते थे हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी की बँटवारे की गतिविधि से खासा दूर होते दिखावा नहीं कर सकते।

#### संदर्भ :

1. आधुनिक भारत का इतिहास : बी. एल. गोवर
2. आग का दरिया : कुरअतुलएन, पृ. 273
3. आधा गांव, राही मासूम रजा, पृ. 255
4. वही, पृ. 283
5. वही, पृ. 307, वही, पृ. 301.03
6. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 429